P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-2* May (Part-1)- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार

मधुबाला मीना
सह–आचार्य,
संस्कृत विभाग,
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

वैदिक काल से ही भारतीय समाज नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता आया है। उसकी रक्षा एवं संवर्द्धन हम सभी का नैतिक दायित्व है, संस्कृत साहित्य अत्यन्त प्राचीन एवं विशाल है, धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को शुद्ध रूप में समझने के लिए विभिन्न विषयों के सर्वांगीण परिशीलन के लिए, वाणी की प्रभावकता एवं चातुर्य के लिए अधिकारों के लिए राष्ट्रीय एकता तथा शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की भावना के लिए आजीविकोपार्जन के लिए संस्कृत साहित्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियों सभी में मानवीय अधिकारों की प्राचीनता को दर्शाया है। सत्ता तथा अधिकारों का संघर्ष उतना ही प्राचीन है। जितनी मानवीय सभ्यता। मानवीय अधिकारों को मूलाधिकार, आधारभूत अथवा नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है।

मुख्य शब्द : सार्वभौमिक, नैसर्गिक, स्वराज्य, भेषज, मूर्धन्य, आजीविकोपार्जन, मोक्ष, कुन्दन, अप्पदीपोभव ।

प्रस्तावना

अधिकार मानव जीवन व सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण और केन्द्रीय स्थान रखते है। समाज के प्रत्येक प्राणी को जीवन जीने का अधिकार है। मानवाधिकार सार्वभौमिक व प्रकृति प्रदत्त है। इनका केन्द्रीय भाव प्रत्येक मानव को समाज में सम्मान एवं गरिमा प्रदान करने के साथ–साथ उनकी क्षमताओं का समुचित विकास करना भी है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि समकालीन समय में मानवीय मूल्यों और आदर्शों की प्रभावी ढंग से रक्षा करने के साथ–साथ एक ऐसे समाज की रचना की जाये, जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी के अधिकारों का हनन नहीं कर सके। अपने स्थापना काल से ही आयोग मानवाधिकार के अभियान को जनान्दोलन के रूप में विकसित करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहा है। आयोग इसका प्रणेता भी है और सूत्रधार भी। आयोग का आदर्श वाक्य है – 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात् सभी सुखी हो। आयोग का अभीष्ट लक्ष्य इस उक्ति को वास्तविकता में बदलने का है। यह अपने आप में महत्वपूर्ण तथा नये युग का सूत्रपात भी है क्योंकि मानवाधिकार प्राचीन काल से ही हमारी प्रकृति व संस्कृति में समाहित है। प्रकृति के साहचर्य में मानव सभ्यता पुष्पित व पल्लवित हुई है। जब प्रकृति की गोद में इंसान जीवन–बसर करता था, चैन से रहता था। तब प्रकृति माँ सरीखी थी और मनुष्य की आवश्यकताएँ पूरी करती थी। साहचर्य का सुख देती थी। तभी से मानवाधिकार हमारे जीवन में समाहित है।

स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि भारतीय समाज में लिंग समानता को ही स्त्रियों के अधिकार की आधारशिला माना गया है। उनकों पुरुषों के समान केवल वोट देने का ही अधिकार नहीं दिया गया अपितु शिक्षा, व्यवसाय, उत्तराधिकार, व्यापार, घरेलू खान–पान यहाँ तक की वैवाहिक जीवन में भी समान अधिकारों का प्रावधान किया गया है।

ऋग्वेद में ही स्त्री अधिकारों को बताते हुए इस मन्त्र में वधू को उपदेश दिया गया है कि वह सास, ससुर, ननद, देवर सभी की साम्राज्ञी बनकर रहे –

साम्राजी श्वसुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवषु।।[1]

प्रस्तुत उदाहरण में वधू को सभी घरवालों के साथ उत्तम व्यवहार की शिक्षा प्रदान की गई है क्योंकि साम्राज्ञी बनने का आधार उत्तम व्यवहार ही बन सकता है। वेदों में अनैतिक आचरण को नरक के समान निन्दनीय कहा है। वैदिक विचारधारा में आशावादी दृष्टिकोण समाहित है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। वैदिक युग में स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन सफलतापूर्वक व्यतीत करने के साथ–साथ विपत्ती आने पर युद्ध क्षेत्र में भी सहयोग देती थी। मुदगल ऋषि की पत्नी गुदगलानी ने इन्द्र सेना में रथ पर बैठकर शत्रूओं से युद्ध कर उनसे गोधन छीनकर उसकी रक्षा की। वैदिक युग में

शिक्षा में भी समानता थी, गार्गी–मैत्रेयी जैसी दार्शनिक स्त्रियाँ हुई, पत्नी के बिना यज्ञादि धार्मिक कार्य भी पूर्ण नहीं माने जाते थे। सुसंस्कृत माता–पिता कन्या का लालन–पालन लड़कों के समान ही करते थे, उनको उत्तम शिक्षा दिलाते, वेदों के अध्ययन के साथ ही संस्कार दिये जाते थे। महिलाओं को जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। बालविवाह व सती प्रथा का प्रचलन नहीं था, पती–पत्नी एक दूसरे के पूरक थे दोनों के मध्य समानता, मित्रता एवं अपनत्व की भावना थी। एक पत्नी को ही मान्यता थी। वैदिक काल में स्त्रियाँ, शिक्षा के अधिकार के साथ ही अन्य कलाओं में भी निपुण थी। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 126 वें[2] सूत्र की रचयिता रोमशा को माना जाता था, लोपामुद्रा ने भी कविता की रचना की थी। सिक्ता, विदावरी ऐसी ही विदुषी स्त्रियाँ थी। वैदिक युग में स्त्री एवं पुरूष को एक–दूसरे का पूरक माना गया है, प्रत्येक देवता के साथ उसकी देवीय शक्ति की भी कल्पना की गई है।

आध्यात्मिकता तथा भौतिकतावाद के बीच भारतीय संस्कृति मानववाद की समर्थक रही है। मानववाद मनुष्य की स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है। भारतीय संस्कृति का पल्लवन विभिन्न कालखण्डों में हुआ है, पुरातन कालीन अच्छे अंशों के साथ ही नवीन विचारों को गृहण करते हुए भारतीय संस्कृति मानवीय सभ्यता के प्रारम्भिक युग से समकालीन युग तक पहुँची है। इसमें विश्वकल्याण की भावना निहित है। भारतीय चिन्तन है कि जगत में कोई भी व्यक्ति दुःखी न हो, न पापी हो, न रोगी हो, न हीन हो, न तिरस्कृत हो और न ही दुष्टचित्त हो। भारतीय संस्कृति संसार के समस्त प्राणियों के सुख तथा कुशलक्षेम की प्रार्थना करती है। जगत के सभी जन मंगलदर्शी हो तथा किसी को दुःख न पहुँचाए। सत्ता तथा अधिकारों का संघर्ष उतना ही प्राचीन है जितनी मानवीय सभ्यता। मानव अधिकारों को मूलाधिकार, आधारभूत अधिकार अथवा नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है।

प्राचीन ग्रंथों में मानवाधिकार

ऋग्वेद

वेद भारत के ही नहीं अपितु पूरे विश्व के महान ग्रंथ हैं जिनकी महिमा पूरे विश्व में गाई जाती है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय अपनी समृद्ध ज्ञान–राशि, मानवीय मूल्यों के सम्पोषक विश्व शान्ति तथा विश्व–बन्धुत्व की उदात्त भावना के संरक्षण के कारण सर्वत्र सम्माननीय रहा है। प्राचीनकाल से ही भारत देश अपनी वैभवपूर्ण सांस्कृतिक विरासत एवं मानवीय मूल्यों के लिए प्रख्यात है। वेदों में वर्णित ये मूल्य समस्त प्राणीमात्र के लिए समानता एवं कल्याणकारी भावना से ओत–प्रोत है। हमारे क्रान्तदर्शी ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत लोककल्याण विषयक निर्देश एवं जीवन–मूल्य हमारे जीवन का मार्गदर्शन करते रहे हैं और वास्तविक रूप में मानव बनने का सन्देश देते है। निःसंदेह सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय आज भी मानव जाति की समानता हेतु नितान्त आवश्यक एवं सर्वथा ग्राह्य है। ऋग्वेद में मानव अधिकारों के लिए इस प्रकार कहा गया है –

अज्ये ठासोअकनि ठास एवे।
सं भ्रातरो वावृधुः सौभाग्यम।।[3]

अर्थात् कोई भी श्रेष्ठ या निम्न नहीं है, सभी बन्धु है – सभी लोग सभी के हित के लिए प्रयत्न करें तथा सभी सामूहिक रूप से प्रगति करें। वैदिक ऋषियों ने अपने अनुभव से यह जान लिया था कि बिना सामूहिक प्रयास के किसी भी सामाजिक कार्य को पूरा नहीं किया जा सकता। यथा –

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवाभागं यथापूर्वसञ्जनानां उपासते।।[4]

अर्थात् साथ साथ चलो, साथ–साथ बोलों, मन को साथ–साथ पहचानों। साथ ही अगले मन्त्र में भी समानता का सन्देश निहित है –

''समाने मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचितमेषाम्''।[5]

अर्थात् हमारे विचार समान हो, हमारा संगठन समान हो, हमारे मन व चित्त एक समान हो। ऋग्वेद में ही अन्यत्र भी मनुष्यों में एकरूपता का आशीर्वाद ऋषियों द्वारा दिया गया है –

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[6]

अर्थात् अपने संकल्पों, हृदयों एवं मनों में एकरूपता होने दो। सभी में परस्पर सहयोग के साथ जीने की शक्ति पुष्ट हो। आज सभ्य और समझदार समाज में रहने वाले मनुष्यों के द्वारा नित्य प्रति व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य रेखा खींची जा रही है। धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, जाति के आधार पर समाज को अलग–अलग किया जा रहा है। इसी एकता के अभाव में 'सोने की चिडिया' कहलाने वाले भारत देश की अनेक बार दुर्दशा हुई है।

'स्वराज्य' शब्द की भावना भी वेदों से आई है। वेदों में स्वराज्य की अर्चना के गीत गाए गए है। कहा गया है कि हमें स्वराज्य के योगक्षेम के लिए सतत जागरूक रहना चाहिए, स्वराज्य की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्रों का निर्माण करें, प्रजाजन भी योद्धाओं का स्तुतिगान करें, उनकी अर्चना करें। योद्वाओं के जोश व होश को बढ़ावे।[7] ''राष्ट्र रक्षा'' की भावना हेतु भी ऋग्वेद में कहा गया है कि राजा तथा मातृभूमि के रक्षक अपने राष्ट्र में विद्रोहियों को पनपने नहीं देवें, उन्हें समाप्त करते रहें। अपने राष्ट्र की भूमि का शोषण करने वाले का विनाश करें, शत्रूओं द्वारा अतिक्रमण की हुई भूमि को मुक्त कराये। स्वराज्य की प्रगति करते रहें। राष्ट्र के शत्रूओं पर प्रबल आक्रमण कर उन्हें भगा देवें। अपने शस्त्रास्त्रों की धार पैनी रखें। छली–कपटी शत्रूओं के साथ छल करने में संकोच नहीं करे, अपने बाहुबल को बढ़ाते रहें।[8] ऋग्वेद में और कर्त्तव्य–कर्मों का परित्याग नहीं कर उत्साहपूर्वक अपने कर्त्तव्यों को पूरा करे। उदात्त भाव से उन्नति के पथ पर अग्रसर हो।

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतां समाः।
एवं त्वपि न ान्पेथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नर।।[9]

वैदिक विचारधारा व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का स्पर्श करती है और मानव जीवन को आदर्श रूप में बनाने का प्रयत्न करती है। वैदिक आदर्श हमारे जीवन में पूर्वजों की अनुपम देन एवं धरोहर है। मनुष्य मात्र के अभ्युदय एवं निःश्रेयस कीर्ति में सर्वथा सहायक है।

वैदिक समत्व की अवधारणा में ऋग्वेद का संज्ञानम्[10] नामक अन्तिम सूक्त सामाजिक उत्कृष्ट भावना का सुन्दर उपदेश देता है कि दिव्य शक्तियों से युक्त देव परस्पर अविरोध भाव से अपने कार्यों को करते है, वैसे ही तुम लोग भी सृष्टि भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त हो, एकमत्य रहो और परस्पर सदभाव में रत हो। यह सूक्त समतापूर्ण दृष्टिकोण का ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें सभी जनों की क्रियाओं, गति, विचारों और मन बुद्धि के पूर्ण सामंजस्य की प्रेरणा दी गई है। सभी का एक सा कल्याणकारी दृष्टिकोण समाज की उन्नति का आधार है।

यजुर्वेद

प्राचीन राष्ट्रनायक अपने राष्ट्र को अपना शरीर मानते थे, और उसकी रक्षा हेतु अपनी भुजाओं में बल रहने की कामना करते थे।[11]

यजुर्वेद में दीर्घ शुभगुणों से युक्त आयु के लिए प्रयत्नशील होने की बात कही है। दुर्गुणों को नष्ट कर कल्याणकारी वस्तुओं एवं परिस्थितियों को प्रदान करने के लिए कहा है।

विश्वानि देव सवितादुरितानि परसुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव।[12]

वेदों में वर्णित इन समानता के भावों की आज समाज को नितान्त आवश्यकता है क्योंकि वैदिक ऋषियों द्वारा ही हमें सहृदयता की शिक्षा दी गई है –

समानो प्रपा सह वोत्रभागः
समानो योक्त्रो सह वो युनीष्म
आराः नाभिमिवाभितः।।[13]

अर्थात् भेषज एवं जल में सभी को समान अधिकार है। जीवन रथ का जुआ सभी के कन्धों पर समान रूप से टिका है। जिस प्रकार रथ के पहिए के आरे रिम और धुरी से जुड़कर एक–दूसरे की मदद करते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्यों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से एक दूसरे की मदद करनी चाहिए। अथर्ववेद में ही राजा के लिए कहा गया है– ''प्रियं सर्वस्व पश्चत उत शूद्र उतार्ये।'' (अथर्ववेद) अर्थात् राजा सभी के प्रिय रहें, आर्यों तथा शूद्रों में समान रूप से प्रिय रहें और भी अथर्ववेद में कहा कि –

''यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसी'' अर्थात् सबल दुर्बल को न सता सके। निर्बल से कोई सबल कोई शुल्क न ले। अथर्ववेद में ही राजा और प्रजा दोनों अति न करें, इस सम्बन्ध में भी कहा गया है। ''ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।''

अथर्ववेद में ही राजा के पाँच गुण बताये है–
भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वविर्ददस्तपो दीक्षामुप निषेदुरगे। तानो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्में देवा उपसंनामन्तु।।

अर्थात् राजा दूरदर्शी, प्रजाजनों का भला चाहने वाला है। उसमें स्वार्थ नहीं हो, बल्कि परोपकार की भावना से कार्य करने वाला हो, प्रजा की तरह वह भी तपवान व दृढ़ संकल्प वाला हो।

अथर्ववेद में वर्णित इन भावों की आज के समाज को नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि वैदिक ऋषियों द्वारा ही हमें सहृदयता की शिक्षा दी गई हैं –

सहृदय सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।अन्या
अन्यमन्निहर्यत वत्सं जातामिधाध्न्या।।[14]

अर्थात् आप सहृदय हों, पवित्र मन वाले हों, द्वेष रहित हों तथा सभी का एक–दूसरे के प्रति वैसा ही भाव हो, जैसा गाय का अपने नव जन्में बछड़े के साथ होता है।

इसी प्रकार पारिवारिक प्रेम का भी उपदेश मन्त्र में दिया गया है –

अनव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पतये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम्।।[15]

अर्थात् पुत्र पिता की आज्ञा का अनुसरण करने वाला बने, माता सहृदया हो, पत्नी व पिता के साथ मधुर वाणी बोले और शान्ति का वातावरण रहे।

जब तक मानव में मानवता जीवन्त रहेगी तब तक वैदिक वाड्.मय में उल्लिखित शाश्वत जीवन मूल्यों को महत्व दिया जाता रहेगा। यथा –

जीवेम् शदः शतम्। बुध्येम शरदः शतम्।
रोहेम शरदः शतम्। पूषेम शदः शतम्।
शवेम शरदः शतम्। भूषेम शदः शतम्।
भूयसी : शदरः शतात्।[16]

अथर्ववेद संहिता में मानसिक एकता की महत्ता के निर्देशक सात समन्वय सूक्त है।[17] इनमें पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय स्तर पर सौहार्द्र और सद्भावना का प्रतिपादन किया गया है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में बार–बार भूमि को माता और स्वयं को उसका पुत्र कहकर उस पर रहने वालों में समानता, विश्वबन्धुत्व और भ्रातृत्व की भावना की प्रतिष्ठा की गई है। भूमि पर मनुष्य के बीच में नीचता, उच्चता रहने पर भी बहुत ही समता और ऐक्य है। यथा –

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी
यथौकसम्।[18]

मानवीय शक्ति व समत्व की भावना वैदिक संस्कृति की व्यापक दृष्टि का उदाहरण है। वैदिक कार्यों का यह महान आदर्श है जो उनके जीवन के बहुपक्षीय चिन्तन को प्रभावित करता है। वैयक्तिक स्वार्थों में लिप्त मनुष्य के लिए आज भी यह आदर्श उतना ही आवश्यक और अनुकरणीय है।

महाभारत

वेदों के अतिरिक्त रामायण–महाभारत में भी अधिकार स्थान पर अधिकारों के प्रति सचेत किया है। जहाँ तक शिक्षा का सवाल है, महाभारत में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के चार कर्त्तव्य होते हैं – ईश्वर के प्रति, माता–पिता के प्रति, शिक्षकों के प्रति तथा मानवता के प्रति। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरूषार्थों के विषय में जो ज्ञान महाभारत में दिया गया है, वह अन्यत्र नहीं। यथा –

धर्मे च अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति यदन्यत्र, यन्नाहास्ति न तत क्वचित।।[19]

महाभारत के आदिपर्व 'शकुन्तलापाख्यान' पर्व में भी महर्षि कण्व अपनी पालिता पुत्री 'शकुन्तला' को आशीष देते है कि –

शुश्रूषस्व गुरून्कुरू प्रियसखिं वृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विकृतापि रोषणतया मा स्मं प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येस्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[20]

अर्थात् पुत्री बड़ों की सेवा करना, सपत्नी जनों के प्रति प्रिय सखी का सा व्यवहार करना तिरस्कृत होकर भी तुम क्रोधवश पति के विपरीत आचरण मत करना, सेवक–सेविकाओं पर पर्याप्त उदार रहना, अपने ऐश्वर्य का अभिमान कभी भूलकर भी न करना, ऐसा व्यवहार करने वाली युवतियाँ गृह–लक्ष्मी के पद को प्राप्त करती है और इसके विपरीत आचरण करने वाली कुल के लिए व्याधि (दुःख का कारण) बनती है। कण्व द्वारा दिया गया यह उपदेश शाश्वत महत्व रखने वाला है। यदि इस उपदेश का अनुकरण किया जाए तो दूषित होते सामाजिक वातावरण पूर्णतया परिष्कृत हो जाये व कौटुम्बिक वातावरण सुख–शान्तियुक्त रहे, सास–बहू के झगड़े व परिवार की कटुता खत्म हो जाये। इसके माध्यम से महर्षि कण्व ने नव–वधू को उसके अधिकारों के साथ ही कर्तव्यों का भी भान कराया है। कण्व द्वारा भेजा गया सन्देश अत्यन्त सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण है। वनवासी होते हुए भी कण्व लौकिक व्यवहार के ज्ञाता थे।

महाभारत के 'शान्ति पर्व' में सभी वर्णों के लिए नौ धर्म–नियम बताए गए हैं।

अक्रोधः सत्यवचन संविभाग क्षमा तथा।
पूजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एवं च।
आर्जवं भरत्यभरणं नवैते सार्वर्णिका।।[21]

अर्थात् क्रोध न करना, सही बात कहना, दूसरों के साथ सम्पत्ति का साझा करना, क्षमा करना, मात्र अपनी पत्नी से बच्चे पैदा करना (यौन नैतिकता) अपने प्रधान न्यायाधीश के परामर्श पर कानून के अनुसार निर्णय देना, इस प्रकार नौ धर्म नियमों के माध्यम से नैतिकता की शिक्षा दी है।

श्रीमद्भागवत गीता

'श्रीमद्भागवत' संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न एवं भक्ति का मूर्धन्य ग्रन्थ है। भागवत पुराण में अद्वैत ज्ञान और भक्ति का अद्वितीय समन्वय किया गया है। इसमें पुरूषार्थ चतुष्टम्, जीवन दर्शन का स्वरूप, मानव मात्र को दिया गया सन्देश का पठन, चिन्तन, श्रवण, मनन कर जीवन में उतारने की आवश्यकता है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि तुम्हें अपना कर्म (कर्त्तव्य) करने का अधिकार है किन्तु उन कर्मों के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो। यथा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेर्तुभूमा ते सङ्ोऽस्त्वकर्मणि।।[22]

और भी –

योगस्थः कुरू कर्माणि सेहूं त्वकत्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[23]

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है कि योग में स्थित होकर कर्म को औश्र जय–पराजय की समस्त आसक्ति त्यागकर समभाव से अपना कर्म करो। अर्जुन को श्रीकृष्ण ने कर्म करने का अधिकार बताया है।

भगवदगीता में ही 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'[24]– कहकर सज्जनों के संरक्षण व दुष्टों के विनाश की बात कही है।

मनुस्मृति –

मुनस्मृति में अपराधी को निश्चित रूप से दण्ड़ देने को कहा गया है –

पिताआचार्य सुहन्माता भार्या पुत्राः पुरोहितः।
नादंड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।

अर्थात् अपराधी से सम्बन्ध रहने पर भी उसे बिना दण्ड़ दिए राजा के द्वारा नहीं छोड़ा जाना चाहिए। पिता, आचार्य, मित्र, माँ, पत्नी, पुत्र या पुरोहित को भी अपराध करने पर बिना दण्ड़ के नहीं छोड़ना चाहिए। शुक्र नीति[25] में भी कहा गया है कि उचित मजदूरी वह है जिससे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में[26]कैदियों को भी अधिकार दिए गए हैं – यदि कोई अधिकारी कैदियों की नित्यक्रिया जैसे सोना, बैठना, भोजन करना आदि में बाधा डालता है, तो उसे तीन पण और उससे अधिक के जुर्माने से दण्ड़ित किया जाएगा। पंथ–निरपेक्षता या सर्वधर्म समभाव के सम्बन्ध में 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि –

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्ट फलं भोक्ता हि राजा धर्मेणयुज्यते।।[27]

अर्थात् राजा को सर्वोच्च कर्त्तव्य अपनी प्रजा का संरक्षण है। जो राजा अपनी प्रजा से कर प्राप्त करता हे तथा उसका संरक्षण करता है, वह धर्म के अनुसार कार्य करता है।

अत्रि संहिता –

अत्रि संहिता में भी कहा है कि न्याय करना राजा का कर्त्तव्य है –

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन
कोषस्य च संप्रवशद्धिः।
अपक्षपातोअर्थिषु राष्ट्र रक्षा पंचेव यज्ञाः
कीर्ति नश्पाणाम्।।[28]

अर्थात् दुष्टों को दण्ड़ देना, भले लोागेंका सम्मान करना, न्यायप्रद तरीको से राजकोष को समृद्ध करना, मुकदमें का निर्णय करने में निष्पक्ष होना, तथा राज्य की रक्षा करना राजा के ये पाँच कर्त्तव्य है।

देववाणी संस्कृत जो कि पवित्र भारत भूमि की दिव्यतम निधि है। प्रत्येक विषय की गंगोत्री भी है विश्व की प्राचीनतम भाषा होने के साथ ही जब हम भारत में मानवाधिकार की प्राचीनता की ओर देखते है तो हमारे प्राचीन ग्रंथ अधिकारों के जन्मदाता प्रतीत होते है। रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियों सभी में मानवीय अधिकारों की बात की गई है।

संस्कृत साहित्य में अनेक ग्रंथों में अधिकारों का बखूबी वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से राष्ट्र की सीमा से परे लोगों की समानता, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व की भावना की हिमायती हमारी संस्कृति रही है। वैदिक काल से ही भारतीय समाज नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता आया है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त प्राचीन एवं विशाल साहित्य है। उसकी रक्षा एवं संवर्धन हम सभी का नैतिक दायित्व है। यह आधुनिक मशीनी युग के लिए उपयुक्त है, अतः इसकी प्राचीनता के लिए आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी एवं पोषक होने के लिए धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को शुद्ध रूप में समझने के लिए विभिन्न विषयों के सर्वांगीण परिशीलन के लिए समृद्ध साहित्य के रसास्वादन के लिए, वाणी की प्रभावकता एवं चातुर्य के लिए, अधिकारों के लिए राष्ट्रीय एकता तथा शान्तिपूर्ण सह

अस्तित्व की भावना के लिए, आजीविकोपार्जन के लिए, साहित्य–सृजन और अध्यापन के लिए संस्कृत अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषा है। इस सम्बंध में यहाँ कहा जा सकता है –

यावद् भारतवर्षः स्यात् यावद् विन्ध्य हिमस्थलौ।
यावद् गंगा च गोदा च तावदेव हि संस्कृतम्।।

और भी –

भारतीय जनता की शिक्षा, संस्कृत बिना अधूरी है।
इसीलिए संस्कृत की शिक्षा, सबके लिए जरूरी है।

अध्ययन का उद्देश्य

देववाणी संस्कृत जो कि पवित्र भारत भूमि की दिव्यतम निधि है। संस्कृत साहित्य के सभी ग्रंथों में मानवीय अधिकारों की बात कही गई है। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के माध्यम से राष्ट्र की सीमा से परे लोगों की समानता, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व की भावना की हिमायती रही है। विभिन्न विषयों के सर्वांगीण परिशीलन के लिए, समृद्ध साहित्य के रसास्वादन, वाणी की प्रभावकता व चातुर्य के लिए, अधिकारों के लिए, शान्ति–पूर्ण सह–अस्तित्व की भावना, आजीविकोपार्जन, साहित्य सृजन और अध्यापन के लिए संस्कृत भाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक उन्नति, कर्त्तव्य, मानवमूल्यपरक, धर्माचरणयुक्त कर्म को प्रमुखता देती है और आत्मिक उन्नति के पंथ पर अग्रसर होकर 'मोक्ष' प्राप्ति की कामना पर पूर्ण होती है। षोडस संस्कारों से जीवन की प्रयोगशाला में मानव रूपी कुन्दन को तपाकर पूर्ण मानव बनने की प्रेरणा प्रदान करती है। सन्तोषः परमं सुखम्, मनसा वाचा कर्मणा, मा हिंस्यात् भूतानि, मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, अतिथि देवो भव (तैतिरीय उपनिषद) स्वधर्मे निधनं श्रेयः[29] मा वृद्धः कस्यस्विद्धनम्[30] निष्काम कर्मयोग (श्रीमद्भगवद 2/47) आदि की प्रेरणा से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति बुद्ध के इस ध्येय वाक्य – अप्पदीपोभव, (अपना प्रकाश स्वयं बनो) को धारण कर जीवन पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान कर रही है।

अंत टिप्पणी

1. *ऋग्वेद 10/85/46*
2. *ऋग्वेद 1/126*
3. *ऋग्वेद 5/60/5*
4. *ऋग्वेद 10/191/2*
5. *ऋग्वेद 10/191/3*
6. *ऋग्वेद 10/191/4*
7. *ऋग्वेद 1/80, 8/45/21*
8. *ऋग्वेद 1/15/6, 1/61/10*
9. *ऋग्वेद 10/29/1*
10. *ऋग्वेद 10/192*
11. *यजुर्वेद 26/6–10, 13*
12. *यजुर्वेद 4/28*
13. *अथर्ववेद, समाज्ञान सूक्त*
14. *अथर्ववेद 3/30/1*
15. *अथर्ववेद 30/30/2*
16. *अथर्ववेद 19/67/2–8*
17. *अथर्ववेद 3/80, 5/1/5, 6/64, 3/73, 6/94, 7/52*
18. *अथर्ववेद 12/1/45*
19. *महाभारत 1/1/26/3*
20. *अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/18*
21. *महाभारत 'शान्ति पर्व'*
22. *श्रीमदभगवद्गीता 2/47*
23. *श्रीमदभगवद्गीता 2/48*
24. *श्रीमदभगवद्गीता 4/8*
25. *शुक्रनीति*
26. *कौटिल्य का अर्थशास्त्र*
27. *मनुस्मृति 7/144*
28. *अत्रि संहिता*
29. *श्रीमदभगवदगीता 3/51/92/31, 83*
30. *ईशावास्योपनिषद मन्त्र सं. – 1*